International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN:3049-2017
IJMH 2025; 2(3): 12-14
© 2025 IJMH
www.themultijournal.com

Received: 08-05-2025
Accepted: 12-05-2025
Publish : 16-05-2025

**मीनाक्षी कोठारी**
शोधार्थिनी, योग विज्ञान विभाग,
स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय,
देहरादून, उत्तराखण्ड

**डॉ. रामभूषण बिजल्वाण**
प्राचार्य,
श्रीगुरूरामराय लक्ष्मण संस्कृत महा-विद्यालय, देहरादून, उत्तराखण्ड

**Correspondence:**
**मीनाक्षी कोठारी**
शोधार्थिनी, योग विज्ञान विभाग,
स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय,
देहरादून, उत्तराखण्ड

# श्रीमद्भागवत महापुराण में भक्ति प्रमुख आधार

**मीनाक्षी कोठारी, डॉ. रामभूषण बिजल्वाण**

श्रीमद्भागवत महापुराण भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति का एक अनुपम ग्रंथ है, यह न केवल अध्यात्मिक विकास का पथप्रदर्शक है बल्कि लौकिक जीवन को भी शुद्ध सुसंस्कृत और संतुलित बनाने में सहायक है। इस ग्रंथ का मूल आधार भक्ति है, भगवद् प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग श्रीमद्भागवत महापुराण में भक्ति को बताया गया है जो मनुष्य को आत्म साक्षात्कार और मोक्ष की ओर ले जाता है, भागवत महापुराण के अनुसार भक्ति का आरंभ उस समय होता है जब मनुष्य के भीतर आस्तिकता का भाव जागृत होता है और वह ईश्वर की सत्ता को स्वीकार कर उनसे जुड़ने की लालसा रखता है। जब परमात्मा की कृपा होती है तभी जीव के हृदय में भक्ति का अंकुर फूटता है, यह भक्ति ज्ञान, योग और तप जैसे साधनों से ऊपर मानी गई है क्योंकि इसमें प्रेम की प्रधानता होती है, जो सीधा ईश्वर से जोड़ती है। पादसेवन भक्ति की आदर्श आचार्या लक्ष्मी जी मानी जाती हैं जो निरंतर भगवान श्री नारायण के चरणों की सेवा में लीन रहती हैं, इस भक्ति में आराध्य के चरणों को अपने जीवन का आधार मानकर उन्हें ही सर्वस्व समझते हुए पूर्ण समर्पण के साथ सेवा करना ही पादसेवन है।

अर्चन भक्ति के प्रमुख आचार्य राजा पृथु माने जाते हैं, अर्चन में मन, वचन और कर्म से पवित्र सामग्री एकत्र कर श्रद्धापूर्वक भगवान के विग्रह या स्वरूप की पूजा करना, उनके नाम, रूप और गुणों का आदरपूर्वक पूजन करना सम्मिलित होता है।

वंदन भक्ति के प्रवर्तक अक्रूर जी हैं, इस भक्ति में आराध्य अथवा पूज्यजनों को पूर्ण श्रद्धा और आदर भाव से नमन करना, नमस्कार करना और सम्मानपूर्वक सेवा भाव प्रकट करना मुख्य होता है।

दास्य भक्ति के आदर्श श्री हनुमान जी हैं, इसमें भक्त अपने आप को भगवान का सेवक मानता है और निरंतर सेवा करता है, ठीक वैसे जैसे एक सच्चा दास अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है, पूर्ण निष्ठा, समर्पण और भावनात्मक लगाव के साथ सख्य भक्ति के प्रमुख अर्जुन हैं, इसमें भक्त भगवान को मित्र के रूप में देखता है, उनसे आत्मीयता रखता है, अपने सारे दुःख-सुख और भावनाएँ उनके सामने प्रकट करता है और सच्चे मित्र की तरह अपना सब कुछ भगवान को समर्पित कर देता है। आत्मनिवेदन भक्ति प्रार्थना का अत्यंत सरल और प्रभावी रूप है, जब भक्त भगवान के सामने अपने हृदय की सभी बातों को खुलकर रख देता है, अपनी आवश्यकताएँ, समस्याएँ या भावनाएँ निवेदित करता है तब यह आत्मनिवेदन कहलाता है, यह भक्ति भगवान से सीधा और अंतरंग संबंध स्थापित करती है।

नवधा भक्ति के तीन वर्ग माने गए हैं -

1. श्रवण, कीर्तन, स्मरण इनमें भक्त स्वयं को भगवान से दूर अनुभव करता है।
2. पादसेवन, अर्चन, वंदन इनमें भक्त भगवान को समीप मानता है।
3. दास्य, सख्य, आत्म निवेदन इनमें भक्त भगवान को अत्यंत निकट अपने आत्मीय रूप में देखता है।

भक्ति का मार्ग भक्त को धीरे-धीरे प्रभु के निकट लाता है, प्रारंभ में दास्य भाव आता है जिसमें भक्त स्वयं को सेवक समझता है और संकोच करता है कि कहीं कोई त्रुटि न हो जाए, इसके बाद सख्य भाव विकसित होता है जिसमें भगवान से मित्रता का भाव बनता है।

भक्ति की विशेषता यह है कि इसमें रस निरंतर बढ़ता रहता है, जबकि ज्ञान मार्ग में स्थिर रस होता है, भक्ति प्रत्येक साधन की शुरुआत और अंत में विद्यमान रहती है, भगवद्गीता में स्वयं श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सगुण भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग बताया है जिससे परमात्मा की प्राप्ति संभव होती है।

श्रीमद्भागवत महापुराण में भक्ति शब्द की उत्पत्ति भज धातु से मानी गई है जिसका अर्थ है सेवा करना, इस प्रकार भक्ति का मूल अर्थ है प्रेमपूर्वक आराध्य की सेवा करना, यह सेवा शारीरिक, मानसिक तथा वाणी के माध्यम से की जा सकती है, भजन शब्द भी इसी धातु से निकला है जो सेवा के भाव को ही दर्शाता है।

भक्ति को विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है इसलिए इसे एक निश्चित परिभाषा में बाँधना कठिन है, फिर भी भक्ति को आराध्य की प्रेमपूर्वक सेवा, भजन, स्तुति गुणगान आदि के रूप में समझा जा सकता है, श्रीमद्भागवत महापुराण के महात्म्य खंड में भक्ति का विस्तृत और प्रभावशाली वर्णन किया गया है जिसमें ज्ञान और वैराग्य जैसे साधनों की तुलना में कलियुग में केवल भक्ति को ही ब्रह्मसाक्षात्कार का सर्वोत्तम माध्यम बताया गया है।

महर्षि नारद जी ने सतयुग, त्रेतायुग और द्वापर में ज्ञान एवं वैराग्य को मुक्ति का साधन बताया परंतु कलियुग में वे भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग मानते हैं, जिसके संदर्भ में श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णन है -

**श्रवणं कीर्तनं विष्णुः स्मरणम् पादसेवनम्।**
**अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ।।**[1]

नवधा भक्ति की विभिन्न विधियाँ जैसे श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन के माध्यम से भक्ति की अभिव्यक्ति होती है, श्रवण भक्ति का आदर्श राजा परीक्षित हैं जिन्होंने श्रद्धा के साथ भगवान की लीलाओं को सुना, कीर्तन भक्ति के आचार्य शुकदेव मुनि हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण की कीर्ति का गान किया, स्मरण भक्ति में प्रह्लाद का उदाहरण सर्वोत्तम है जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी भगवान का स्मरण नहीं छोड़ा।

विदुर, उद्धव, ध्रुव और प्रह्लाद जैसे चरित्रों के माध्यम से भागवत में भक्ति के स्वरूप को अत्यंत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है जिससे यह सिद्ध होता है कि भक्ति मार्ग सबसे सरल, सुलभ और प्रभावशाली है। जिस व्यक्ति के हृदय में केवल श्रीहरि की भक्ति निवास करती है वह व्यक्ति भले ही बाह्य रूप से अत्यंत निर्धन हो, फिर भी वह वास्तव में परम धन्य होता है क्योंकि भक्ति की पवित्र डोरी से बंधकर स्वयं भगवान भी अपना परम धाम त्यागकर भक्त के हृदय में निवास करते हैं।

मनुष्य जब कर्तापन के अभिमान में आ जाता है तभी वह अनेक प्रकार के दुखों का अनुभव करता है। महाभारत में कहा गया है 'कर्ता दोषेन लिप्यते' अर्थात जो स्वयं को कर्ता मानता है वही दोष का भागी होता है, इसलिए जब मनुष्य अपने सभी कर्मों को भगवान को अर्पित करता है और धर्म, अर्थ व काम में ईश्वर की भावना से आचरण करता है तो वही सच्ची भक्ति मानी जाती है।

**वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथां**
**हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पदयोर्नः।**
**स्मृतियां शिरस्तव निवास जगत्प्रणामे**
**दृष्टिः सततं दर्शनं भक्तजनानाम्।।**[2]

इस श्लोक का अर्थ है कि हमारी वाणी सदा भगवान के गुणों का वर्णन करे, कान प्रभु की कथा सुनने में रत रहें, हाथ प्रभु की सेवा में लगें, मन प्रभु के चरणों में लीन रहे, मस्तक जगत में भगवान स्वरूपों को नमन करे और नेत्र सदा भक्तों का दर्शन करते रहें।

जब हमारी समस्त इंद्रियाँ और चित्त केवल प्रभु में ही रमे रहते हैं वही सच्ची भक्ति है। जैसे एक बालक को अपनी मां का नाम, उसका सान्निध्य और उसका प्रेम अत्यंत प्रिय लगता है वैसे ही यदि किसी को भगवान उनका नाम और उनका साथ प्रिय लगने लगे तो समझना चाहिए कि उसके भीतर भक्ति का आरंभ हो चुका है।

जैसे ज्ञानी को आत्मस्वरूप में प्रेम होता है, वैसे ही सच्चे भक्त को भगवान में प्रीति होती है। सच्ची भक्ति में भगवान का ध्यान करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह तो स्वाभाविक हो जाता में है, भक्त दिन-रात प्रभु के गुणों का गान करता है, उनकी चर्चा करता है, जैसे भूखे को बिना प्रयास के अन्न की याद आती है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध में भगवान श्रीकृष्ण ने भक्ति की महिमा बताते हुए कहा है -

**वध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयै राजितेन्द्रियः।**
**लालची प्रग्लभ्य भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते।।**[3]

अर्थात यदि मेरा भक्त विषयों में लिप्त हो भी जाए, इंद्रियाँ उसे मोहित करने का प्रयास करें, फिर भी यदि वह मेरी भक्ति में स्थिर है तो वह विषय उसे अपने वश में नहीं कर सकते। उसकी भक्ति ही उसे विषयों की पराजय से बचा लेती है जिस संदर्भ में वर्णन आता है कि

**मदार्थे धर्मकामार्थनाचरन् मदपाश्रयः।**
**लभते निश्चलं भक्तिन्मययुद्धव सनातने।।**[4]

अर्थात यदि कोई व्यक्ति भगवान की प्रसन्नता के लिए धर्म, अर्थ और काम का आचरण करता है और ईश्वर का आश्रय लेता है, तो वह सनातन और स्थिर भक्ति को प्राप्त करता है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध के चतुर्दश अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को भक्ति का यह गूढ़ रहस्य बताया है

**भक्त्या तु अहमेकैव ग्राह्यः श्रद्धया अत्यन्त प्रियः सततम्।**
**भक्तिः पुनाति मत्तिष्ठा श्वपाकानपि संभावनात।।**[5]

अर्थात मैं केवल एकमात्र भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता हूँ, जो श्रद्धा से युक्त होकर निरंतर मेरी भक्ति करता है वह मुझे अत्यंत

प्रिय होता है, मेरी ओर समर्पित भक्ति इतनी पावन होती है कि वह मुझ में स्थित होने के कारण अत्यंत निम्न कुल में उत्पन्न प्राणी (श्वपाक) को भी शुद्ध कर देती है।

मानव जीवन में सुख-दुख, लाभ-हानि जैसे द्वंद्वों से ऊपर उठकर आत्मिक आनंद की प्राप्ति के लिए भक्ति ही सबसे आवश्यक मार्ग है। यही कारण है कि संत-महात्माओं, ऋषियों तथा लोक कल्याण के पथ पर चलने वाले महापुरुषों के जीवन में भक्ति का भाव प्रमुख रहा है, उनके जीवन से किसी को कभी कष्ट या भय नहीं होता था और स्वयं भी वे दुखों से विचलित नहीं होते थे, यह उनके आदर्श आचरण की विशेषता थी।

आज के समय में जब भौतिकवाद और प्रतिस्पर्धा की दौड़ ने जीवन को अशांत बना दिया है, तब मानसिक शांति, धैर्य और तनावमुक्त जीवन के लिए भक्ति मार्ग अत्यंत उपयोगी है, भक्ति से ही सौहार्द्र, करुणा और निरंतर सक्रिय रहने की प्रेरणा मिलती है। दया, तप, योग, यज्ञ, ज्ञान या तीर्थ यह सब बिना भक्ति के परमात्मा की प्राप्ति नहीं करा सकते, इसका प्रमाण गोपिकाएँ हैं जिन्होंने केवल भक्ति के बल पर भगवान श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लिया, इसलिए कहा गया है कि मोक्ष का एकमात्र सच्चा साधन भक्ति ही है।

व्यवहारिक दृष्टि से देखा जाए तो मानव जीवन में भक्ति का उद्भव आस्तिक भावना से होता है, जब परमात्मा की कृपा होती है तब व्यक्ति के अंतःकरण में भक्ति की शक्ति जागृत होती है जिससे अज्ञान रूपी अंधकार समाप्त होने लगता है, आत्मिक शांति की अनुभूति होने लगती है और आत्मसंतोष की प्राप्ति होती है, ईश्वर से संबंधित सभी भ्रम और संशय दूर हो जाते हैं और अंततः भक्ति के माध्यम से अद्वैत की अनुभूति होती है जहाँ ईश्वर स्वयं आत्मरूप में प्रकट हो जाते हैं।

**निष्कर्ष :-**

श्रीमद्भागवत महापुराण के माध्यम से मनुष्य भक्ति, योग, करुणा, भावना, दया, विनम्रता जैसे सद्गुणों को अपने जीवन में विकसित कर सकता है। यह ग्रंथ मुक्तिपथ कहा गया है क्योंकि यह जीवन में उत्पन्न त्रितापों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) का शमन करता है भक्ति ही परम सत्य की प्राप्ति का सबसे सरल और प्रभावी मार्ग है, इसमें निष्काम भक्ति (जिसमें फल की इच्छा न हो) को सर्वोच्च माना गया है, यह भी कहा गया है कि कलियुग में अन्य साधन कठिन हो सकते हैं परंतु नाम-संकीर्तन और हरि कथा श्रवण से भी मोक्ष संभव है।

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-**

1.श्रीमद्भागवत महापुराण - 7/5/23

2.श्रीमद्भागवत महापुराण - 12/2

3.श्रीमद्भागवत महापुराण, महात्म्य - 2/19

4.श्रीमद्भागवत महापुराण, महात्म्य - 2/63

5.श्रीमद्भागवत महापुराण - 10/10/38